International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 433-434

वंशमण्डल के आधार पर अग्नि–बृहस्पति का अन्तःसम्बन्ध

डॉ0 भानु प्रकाश त्रिपाठी
अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्व विद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

प्रकृति के प्रत्येक क्षेत्र में परिव्याप्त दिव्य चेतनशक्ति के दर्शन करने वाले और उसे देवता के रूप में महत्ता प्रदान करने वाले आर्यों का ध्यान किसी ऐसे एक देवता की धारणा की ओर जाना स्वाभाविक था, जिसे वे प्रतिदिन विभिन्न देवों की स्तुति में बनाये जाते हुए सूक्तों एवं वाणी के अन्य व्यापारों का अधिपति मान सकें। यज्ञ का उन दिनों मानव जीवन में सर्वाधिक प्रमुख स्थान था और यज्ञ का सम्पूर्ण संचालन वाक् या वाणी के द्वारा ही होता है। जगत् की सर्वोत्कृष्ट शक्ति यज्ञ की आधारभूमि के रूप में वाक् की सर्वातिशायिनी महत्ता ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त (10.125) में अत्यन्त प्रभावशाली रुप में व्यक्त हुई है। बृहस्पति इसी वाक् के अधिष्ठाता हैं।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।।[1]

ऋग्वेद में बृहस्पति की एक प्रमुख संज्ञा ब्रह्मणस्पति है। ब्रह्म का अर्थ है सूक्त अथवा स्तोत्र। यह शब्द बृंह् धातु से निष्पन्न हुआ है। जिस तत्त्व से देवों का बृंहण अथवा बलवर्धन किया जाय वह ब्रह्म है। ऋग्वेद[2] के अनेक मंत्रों में कहा गया है कि अपनी प्रशंसा में स्तोत्र सुनते ही इन्द्र का बल बढ़ने लगता है और फिर वे असुरों से युद्ध करने के लिए और अधिक सामर्थ्यशाली हो जाते हैं।
ब्रह्म के समान बृह शब्द भी सम्भवतः इसी अर्थ की संज्ञा है। ब्रह्मणस्पति तथा बृहस्पति दोनों ही षष्ठी विभक्ति के पद हैं और दोनों का अर्थ भी एक ही है।
इससे स्पष्ट होता है कि बृहस्पति सूक्तों की रचनात्मक शक्ति के प्रतीक के रूप में ब्रह्म या स्तोत्रों के अधिपति हैं।
बृहस्पति के स्वरूप में अग्नि सम्बन्धी अनेक विशेषतायें प्राप्त होती हैं। अग्नि की भांति वे भी बल के पुत्र हैं।[3] अग्नि की भांति बृहस्पति के भी तीन निवास स्थान हैं–यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थोरवेण।[4] बृहस्पति भी गृहों के पूज्य और आवासों के अधिपति हैं–शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम्।[5] बृहस्पति के लिए अग्नि का प्रमुख विशेषण सदस्पति भी प्रयुक्त हुआ है।[6] बृहस्पति भी अग्नि के समान राक्षसों को अपने ताप से भस्म कर देते हैं।[7] अथवा उनका वध कर देते हैं।[8] एक मंत्र में अग्नि को यद्यपि अन्य देवों के साथ भी समीकृत किया गया है तथापि अग्नि बृहस्पति के साथ अधिक घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं, क्योंकि मंत्र में ये दोनों ही पद सम्बोधन के रूप में आये हैं–

त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरूरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्म रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या।।[9]

एक अन्य मंत्र में मातरिश्वन्, द्रुतगति से चलने वाले, अतिथि, विद्वान्, पुरोहित के साथ–साथ बृहस्पति भी अग्नि की उपाधि के रूप में प्रयुक्त है।[10] पुनः एक अन्य मंत्र में जहां नील पृष्ठ बृहस्पति को आवासों में अपना आश्रय बनाने वाला, उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित और स्वर्णवर्ण तथा अरुणिम कहा गया है वहां बृहस्पति के रुप में अग्नि का ही अर्थ स्पष्ट रूप से निकलता है–

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृस्पतिं सदने सादयध्वम्।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरूषं सपेम।।[11]

ऋग्वेद[12] के दो अन्य मंत्रों में बृहस्पति, अग्नि के एक रूप नराशंस (अर्थात् मनुष्यों के प्रशंसित) प्रतीत होते हैं। इस सम्बन्ध में बर्गेन का विचार है कि अग्नि के जिस वास्तविक पक्ष का नराशंस प्रतिनिधित्व करता है वह एक द्वितीय बृहस्पति की भांति मनुष्यों की स्तुति के एक देवता का ही रूप है।[13] एक ऋचा में अग्नि को ब्रह्मणस्कवि अर्थात् स्तुतियों का ऋषि भी कहा गया है–

त्वं नः पाहि अंहसः जातवेदो अघायतः।
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे।।[14]

और साथ ही पृथिवी एवं आकाश को स्तुतियों द्वारा अनुकूल बनाने के लिए उनका आवाहन किया गया है।[15]
ऐसे ही अन्य उल्लेखों के आधार पर विभिन्न पाश्चात्त्य विद्वानों का मत है कि बृहस्पति अग्नि के ही कोई रुप हैं। मैकडौनेल के अनुसार ''बृहस्पति मूलतः यज्ञ सम्पन्न कराने वाले दिव्य पुरोहित के रूप में अग्नि के ही एक ऐसे पक्ष का प्रतिनिधित्व करते थे जिसने ऋग्वैदिक काल के आरम्भ में ही एक स्वतंत्र प्रकृति विकसित कर लिया था।'' फिर भी अग्नि के साथ इनका सम्बन्ध सर्वथा विच्छिन्न नहीं हो सका।[16] लैÁलोइस, विल्सन और मैक्समूलर जैसे विद्वान् भी बृहस्पति को अग्नि का ही एक प्रकार मानते हैं। रौथ के अनुसार यह पौरोहित्य प्रधान देवता स्तुति की शक्ति का प्रत्यक्ष प्रतिरूप है। ऐसा ही विचार औल्डेनबर्ग का भी है कि–यह पौरोहित्य कर्म का ही एक पृथक् रूप है जिसने पहले के देवों के कृत्यों को भी अपना लिया था।[17]
इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि अग्नि की दिव्य पुरोहित के रुप में स्तोत्रों के अधिष्ठाता मानने की धारणा ही स्वतंत्र रूप से विकसित होकर बृहस्पति बन गयी। किन्तु वस्तुतः अग्नि और बृहस्पति के सम्बन्ध की प्रक्रिया इससे पूर्णतः भिन्न है। अग्नि का यज्ञ में सर्वतोभावेन अत्यधिक महत्त्व होने के कारण उनका तादात्म्य यज्ञ के विभिन्न पुरोहितों से किया गया है। ऋग्वेद के सर्वप्रथम मंत्र में ही उन्हें यज्ञ का पुरोहित, ऋत्विज् तथा होता कहा गया है।[18]

अन्यत्र एक मंत्र में वे कवि कहे गये हैं।[19] अनेक स्थानों पर उन्हें ऋषि कहा गया है। इसी प्रकार ऋग्वेद के एक मंत्र में अग्नि को स्तोत्रों का निर्माता या ब्रह्मणस्कविः कहा गया है।[20] देवों के लिए सम्बन्धित स्तोत्रों का उच्चारण कर अग्नि में आहुति दी जाती है। सभी मंत्रों से अग्नि देव का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में है। अतः यज्ञ के अन्य पुरोहितों की भांति उन्हें ब्रह्म (स्तोत्र गायक) अथवा ब्रह्मा का स्वामी (ब्रह्मणस्पति) भी कहा गया है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में ब्रह्मणस्पति शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है जैसे–त्वं ब्रह्म रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या।[21] एवं

अच्छा वद तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्।
अग्निं मित्रं न दर्शयतम्।।[22]

ब्रह्मणस्पति और अग्नि का तादूप्य यज्ञ से दोनों के समान सम्बन्ध पर आधारित है। धीरे–धीरे दोनों देवों की विशेषताओं का पारस्परिक आदान– प्रदान हुआ है। किन्तु बृहस्पति ने अग्नि की अधिक विशेषताएं आत्मसात् की हैं क्योंकि वे मूल रूप में एक पूर्णतः अमूर्त देवता थे और उनकी अपनी व्यक्तिगत विशेषताएं अत्यन्त न्यून थीं। एतद् विपरीत अग्नि के मुख्यतया भौतिक और स्थूल होने के कारण उनमें ऐसी विशेषताओं का स्वभावतः प्राधान्य था। इन्हीं विशेषताओं के आदान–प्रदान के कारण अग्नि को आंगिरस[23] कहा गया है, जो बृहस्पति की एक विशेष उपाधि है। दूसरी ओर बृहस्पति का लगभग सम्पूर्ण शारीरिक वर्णन अग्नि के आधार पर हुआ है। उनका वर्ण हिरण्य के समान है, वे अरूष या भूरे हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी तथा भास्वर हैं।[24] वे अत्यन्त पवित्र (शुचि) हैं और उनकी वाणी स्पष्ट है।[25] वे अग्नि के समान नीलपृष्ठ हैं।[26] उनकी जिह्वायें सुन्दर हैं।[27] वे सप्तमुख तथा सप्तरश्मियों से युक्त हैं।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे ब्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातोरवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि।।[29]

इससे प्रतीत होता है कि बृहस्पति एवं अग्नि के मध्य अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। कई स्थलों पर इसी तद्रूप्यता के कारण दोनों अपृथक् प्रतीत होते हैं। फिर भी अन्यत्र बृहस्पति का अग्नि से विभेद भी किया गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि बृहस्पति ने उषा, आकाश और अग्नि को ढूँढ़ा तथा एक सूक्त द्वारा अंधकार को भगाया।[30] एक अन्य मंत्र में अग्नि से निवेदन किया गया है कि वे इन्द्र, रूद्र, अदिति आदि के साथ बृहस्पति को लायें।[31] ऋग्वेद के कई स्थलों पर जहां अनेक देवताओं का एक साथ नामोल्लेख है या आह्वान है, अग्नि का बृहस्पति से पृथक् रूप में उल्लेख है–दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं चदेवम्।[32] तथा अपामग्नेरूषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराÁरसस्य जिष्णोः[33]। उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि अग्नि का बृहस्पति के साथ इतना प्रगाढ़ सम्बन्ध है कि वे दोनों देवता एक ही प्रतीत होते हैं।

सन्दर्भ

1. ऋ0सं0 10.71.1
2. (क) यस्य ब्रह्मवर्धनम्–ऋ0सं0 2.12.14
   (ख) यः स्तोमेभिः ववृधे पूर्व्येभिः–ऋ0सं0 2.32.12
   (ग) इन्द्र ब्रह्मणि तविषीम् अवर्धन्–ऋ0सं0 5.31.10
   (घ) अवाभिनद् उक्थैः वावृधानः–ऋ0सं0 2.11.2
3. ऋ0सं0–10.4.2
4. ऋ0सं0–4.50.1
5. ऋ0सं0–7.97.5
6. ऋ0सं0–1.21.15
7. तेजिस्ठया तपनी रक्षसस्तप यो त्वा निदे दधिरे
   द्दष्टवीर्यं।–ऋ0सं0–2.23.14
8. ऋ0सं0–10.103.4
9. ऋ0सं0–2.1.3
10. तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम्। बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिंथिं रघुष्यदम्।।
    ऋ0सं0 3.26.2
11. ऋ0सं0–5.43.12
12. ऋ0सं0–1.18.19 एवं 10.182.2
13. वैदिक माइथौलोजी मैकडौनेल, हि0अनु0 रामकुमार राय पृष्ठ–190
14. ऋ0सं0–6.16.30
15. ऋ0सं0–2.2.7
16. वैदिक माइथौलोजी मैकडौनेल हि0अनु0 रामकुमार राय,पृष्ठ–191–197
17. वही
18. ऋ0सं0–1.1.1 अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातम्।
19. ऋ0सं0–6.14.2
20. ऋ0सं0–6.16.3
21. ऋ0सं0–2.1.3
22. ऋ0सं0–1.38.13
23. त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिः। ऋ0सं0–1.31.1
24. ऋ0सं0–5.43.12
25. ऋ0सं0–7.97.5
26. ऋ0सं0–7.97.7
27. ऋ0सं0–1.190.1
28. अराय्यं ब्रह्मणस्पतेतीक्ष्णशृंगोदृषन् इहि।–ऋ0सं0–10.155.2
29. ऋ0सं0–4.50.4
30. सः उषाम् अविन्दत् सः सो अग्निम सो अर्केण वि बबाधे तमांसि। ऋ0सं0–10.68.9
31. ऋ0सं0–7.10.4
32. ऋ0सं0–3.20.5
33. ऋ0सं0–4.40.1